

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 4 अध्याय 3: शिव और सती

14 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



कैलास की ऊँचाइयों से सती देखती हैं कि स्वर्ग की देवियाँ हंस-श्वेत विमानों में उनके पिता के महान् यज्ञ की ओर उड़ी जा रही हैं — और अपने स्वजनों के बीच होने को तरसते हृदय से वे भगवान् शिव से विनती करने मुड़ती हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विङ्गडम् में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में आहत अभिमान ने दक्ष को अपने सौम्य जामाता भगवान् शिव के विरुद्ध कर दिया, और देवताओं की सभा शाप तथा प्रति-शाप के तूफान में बिखर गई। यह तृतीय अध्याय उस कलह के मानवीय हृदय को खोलता है। जब वह वैर बहुत लम्बे समय तक सुलगता रहता है, तब

दक्ष, अब समस्त प्रजापतियों के प्रौढ़ अधिपति, एक भव्य यज्ञ आरम्भ करते हैं — और उसका समाचार कैलास तक पहुँचता है। सती, दक्ष की कन्या तथा शिव की परम भक्त पत्नी, देवताओं की पत्नियों को उस उत्सव की ओर उड़ते देखती हैं और अपने पितृगृह जाने की उत्कंठा से भर उठती हैं। तत्पश्चात् जो घटित होता है वह शास्त्रों के सबसे कोमल तथा मर्मस्पर्शी संवादों में से एक है: अपने स्वजनों के लिए एक पत्नी की तड़प, जो एक पति की उस स्पष्ट चेतावनी के सामने रखी जाती है कि किसी सम्बन्धी की अवमानना कितना गहरा घाव कर सकती है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 4 (चतुर्थ स्कन्ध)
- अध्याय: 3 (तृतीय अध्याय)
- अध्याय का शीर्षक: भगवान् शिव और सती का संवाद
- मुख्य वक्ता: महर्षि मैत्रेय, विदुर को अपने उपदेश की निरन्तरता में, जो सती तथा भगवान् शिव के संवाद का वर्णन करते हैं
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: भगवान् शिव का धाम (कैलास), जहाँ से सती देवताओं को दक्ष के यज्ञ की ओर जाते देखती हैं
- केन्द्रीय विषय: सती की अपने पिता दक्ष के महान् यज्ञ में जाने की उत्कंठा, तथा भगवान् शिव का उन्हें न जाने की कोमल किन्तु दृढ़ सलाह
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 4, अध्याय 3, श्लोक 1-25
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 2 में, जब भगवान् शिव प्रजापतियों की महान् सभा में दक्ष के सम्मान में नहीं उठे, तब दक्ष अपमानित हो उठे। उन्होंने शिव की निन्दा कर उन्हें शाप दिया; शिव के परिचर नन्दीश्वर तथा ऋषि भृगु ने प्रति-शापों से उत्तर दिया; और भगवान् शिव, हर अपमान को मौन में सहते हुए, अपने अनुयायियों सहित चुपचाप सभा से चले गए। जामाता तथा श्वसुर के बीच का वही विच्छेद वह घाव है जिससे इस अध्याय का शोक अब उपजता है।

वर्षों तक सुलगता वैर

मैत्रेय समय के प्रवाह को चिह्नित करते हुए अपना वृत्तान्त पुनः आरम्भ करते हैं — भगवान् शिव तथा दक्ष के बीच वह कटुता वर्षों तक यूँ ही खिंचती चली गई।

मैत्रेय उवाच

सदा विद्विषतोरेवं कालो वै ध्रियमाणयोः ।

जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥ १ ॥

maitreya uvāca sadā vidviṣator evaṁ kālo vai dhriyamāṇayoḥ jāmātuḥ śvaśurasyāpi sumahān aticakrame

अर्थ: मैत्रेय ने कहा: जब जामाता (भगवान् शिव) तथा श्वसुर (दक्ष) इस प्रकार एक-दूसरे के प्रति वैर धारण किए रहे, तब बहुत लम्बा समय बीत गया। (स्कन्ध 4, अध्याय 3, श्लोक 1)

इस बीच, ब्रह्मा, देवताओं में सर्वोच्च, ने दक्ष को समस्त प्रजापतियों का अधिपति नियुक्त कर दिया था। इस सम्मान से उनका अभिमान बढ़ गया। एक वाजपेय यज्ञ करके, तथा अपने अहंकारपूर्ण आचरण से पवित्र ज्ञान में सर्वाधिक निपुण जनों तक की अवहेलना करके, उन्होंने अब समस्त यज्ञों में सबसे बड़े, बृहस्पति-सव नामक यज्ञ का आरम्भ किया।

दक्ष का महान् यज्ञ

इस भव्य अनुष्ठान में समस्त पवित्र समाज एकत्र हुआ: ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितरगण तथा देवगण, सब प्रकार के रत्नों से अलंकृत — और उनकी पत्नियाँ भी अपने पतियों के साथ सज्जित। यह समस्त स्वर्गलोक का उत्सव था, और उसकी दिव्यता शीघ्र ही कैलास के द्वार तक पहुँचने वाली थी।



दक्ष, अब प्रजापतियों के प्रौढ़ अधिपति, महान् बृहस्पति-सव यज्ञ आरम्भ करते हैं, जिसमें ऋषि, देवर्षि, पितरगण तथा देवगण, सब अपनी पत्नियों सहित रत्नों से अलंकृत होकर सम्मिलित होते हैं (श्लोक 3-4)।

सती देवताओं को उड़ते देखती हैं

उस उत्सव का समाचार सती तक निमन्त्रण से नहीं, वायु पर आया। उन्होंने आकाश-मार्ग से जाते हुए दिव्य प्राणियों को अपने पिता के घर के महान् यज्ञोत्सव की ऊँचे स्वर में चर्चा करते सुना। फिर उन्होंने उन्हें अपनी आँखों से देखा — देवताओं की सुन्दर पत्नियाँ, चंचल नेत्रों तथा चमकते कुण्डलों वाली, सुन्दर वस्त्रों में सज्जित तथा कण्ठ में स्वर्ण-आभूषण धारण किए, हर दिशा से अपने विमानों में उड़ती हुई, उनके अपने

धाम के पास से, उनके पिता के घर की ओर जाती हुई। उनके साथ जाने की उत्कंठा से भरकर, वे अपने पति, भगवान् शिव, प्राणियों के स्वामी की ओर मुड़ीं और बोलने लगीं।



कैलास पर अपने धाम से सती देखती हैं कि देवताओं की अलंकृत पत्नियाँ अपने विमानों में उनके पिता के यज्ञ की ओर उड़ी जा रही हैं, और उनका हृदय अपने स्वजनों के बीच होने की तड़प से भर उठता है (श्लोक 5-7)।

सती की विनती

सती की विनती में सारी कोमलता तथा तड़प है। वे शिव से कहती हैं कि उनके श्वसुर, प्रजापति के निवास पर, इस समय एक भव्य यज्ञोत्सव आयोजित हुआ है; यदि वे चाहें, तो वे भी चलें, क्योंकि ये सारे दिव्य प्राणी तो जा ही रहे हैं।

सत्युवाच

प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य साम्प्रतं

निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ।

वयं च तत्राभिसराम वाम ते

यद्यर्थितामी विबुधा व्रजन्ति हि ॥ ८ ॥

saty uvāca prajāpates te śvaśurasya sāmpratam niryāpito yajña-mahotsavaḥ kila vayan ca tatrābhisarāma vāma te yady arthitāmī vibudhā vrajanti hi

अर्थ: सती ने कहा: इस समय आपके श्वसुर, प्रजापति के निवास पर, एक भव्य यज्ञोत्सव आयोजित हुआ है। हे वामदेव, यदि आप चाहें, तो हम भी वहाँ चलें, क्योंकि ये सारे देवगण जा रहे हैं। (स्कन्ध 4, अध्याय 3, श्लोक 8)

वे कहती हैं कि उनकी बहनें निश्चय ही अपने पतियों के साथ वहाँ होंगी, अपने कुटुम्बीजनों से मिलने को उत्सुक; वे भी उनके बीच रहना तथा माता-पिता से मिलने वाले उपहार पाना चाहती हैं। वे अपनी बहनों, अपनी मौसियों, और सबसे बढ़कर अपनी माता को देखना चाहती हैं, जिनका हृदय उनके प्रति स्नेह से भरा है — वे प्रियजन जिनके लिए उनका अपना हृदय बहुत समय से तड़प रहा है। और वे उन श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा किए जा रहे उस महान् यज्ञ को भी देखना चाहती हैं।

फिर भी विनती करते हुए सती कुछ ऐसा स्वीकार करती हैं जो केवल गृह-विरह से कहीं अधिक गहरा है।

त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया
विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकम् ।
तथाप्यहं योषिदतत्त्वविच्च ते
दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥ ११ ॥

tvayy etad āścaryam ajātma-māyayā vinirmitaṁ bhāti guṇa-trayātmakam tathāpy ahaṁ yoṣid atattva-vic ca te dīnā didṛkṣe bhava me bhava-kṣitim

अर्थ: हे अज (अजन्मा), तीन गुणों से रचा गया यह सम्पूर्ण अद्भुत विश्व आप ही में स्थित है, और आप सदा इससे अस्पर्शित रहते हैं। किन्तु मैं तो एक साधारण स्त्री हूँ, आपकी परम सत्य की दृष्टि से रहित; इसलिए हे भव, मेरा यह जन्मस्थान अब भी मुझे बाँधे रखता है, और मैं उसे एक बार फिर देखना चाहती हूँ। (स्कन्ध 4, अध्याय 3, श्लोक 11)

यह एक चौंका देने वाली स्वीकृति है: भगवान् शिव की अर्धांगिनी यह दावा नहीं करती कि वे माया के आकर्षण से ऊपर उठ चुकी हैं; वे इसे अपनी ही सीमा मानकर ईमानदारी से स्वीकार करती हैं, तभी जब वे यह भी देख पाती हैं कि उनके पति उस आकर्षण से सर्वथा परे हैं। वैष्णव आचार्य इस संवाद को विनम्रता की एक कोमल शिक्षा के रूप में पढ़ते हैं — अपने जन्मस्थान तथा स्वजनों के प्रति आसक्ति स्वयं में कोई दोष नहीं, किन्तु वह निश्चय ही माया का ही कार्य है, और केवल शिव जैसी पूर्ण समर्पित आत्मा ही उसके बन्धन से मुक्त है। सती की यह ईमानदारी, किसी तर्क से कहीं अधिक, आगे आने वाली शिव की सलाह को कठोर के स्थान पर कोमल बना देती है।

तब, आकाश में अब भी उड़ते हंस-श्वेत विमानों के झुण्डों की ओर संकेत करते हुए, वे अपने हृदय की सबसे सच्ची बात कह उठती हैं।

कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं
निशम्य देहः सुरवर्य नेङ्गते ।
अनाहुता अप्यभियन्ति सौहृदं
भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥ १३ ॥

kathaṁ sutāyāḥ pitṛ-geha-kautukaṁ niśamya dehaḥ sura-varya neṅgate anāhutā apy abhiyanti sauhṛdaṁ bhartur guror deha-kṛtaś ca ketanam

अर्थ: हे देवश्रेष्ठ, अपने माता-पिता के घर के आनन्दमय उत्सव को सुनकर किसी कन्या का शरीर कैसे अविचलित रह सकता है? स्नेहवश लोग बिना बुलाए भी पति, गुरु अथवा पिता के घर चले जाते हैं। (स्कन्ध 4, अध्याय 3, श्लोक 13)

अतः वे विनती करती हैं कि वे अपनी करुणा से उन्हें यह एक अभिलाषा पूरी करने दें। क्या उन्होंने उन्हें अपने ही शरीर के वाम अंग में स्थान नहीं दिया, अर्धनारीश्वर का रूप स्वीकार करके? तब वे उस पर, जिसे उन्होंने अपना आधा अंग बना लिया है, यह कृपा करें।



कैलास पर भगवान् शिव के पास बैठी सती, अपने पिता के यज्ञ में जाने तथा अपनी माता और बहनों को पुनः देखने के लिए भक्तिपूर्वक विनती करती हैं (श्लोक 8-14)।

भगवान् शिव का कोमल उत्तर

अपनी प्रिया द्वारा इस प्रकार अनुनय किए जाने पर, शिव — जो अपने सम्बन्धियों के प्रति इतने प्रेममय हैं — को वे बाण-सदृश निन्दा-वचन स्मरण हो आए जो दक्ष ने कभी अन्य प्रजापतियों के समक्ष उन पर छोड़े थे, ऐसे वचन जो मर्म तक बीँध गए थे। वे धीरे से हँसे और उत्तर दिया।

उनका उत्तर पहले सती की बात मान लेता है, फिर उसे मोड़ देता है। वे सहमत होते हैं कि जो उसने कहा वह अत्यन्त सत्य है: लोग बिना बुलाए भी अपने स्वजनों के घर चले जाते हैं। किन्तु यह तभी होता है जब उस सम्बन्धी का मन अभिमान तथा देह के साथ मिथ्या तादात्म्य से उपजी दुर्भावना से कलुषित न हो।

श्रीभगवानुवाच

त्वयोदितं शोभनमेव शोभने

अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु ।

ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो

बलीयसानात्म्यमदेन मन्युना ॥ १६ ॥

śrī-bhagavān uvāca tvayoditaṁ śobhanam eva śobhane anāhutā apy abhiyanti bandhuṣu te yady anutpādita-doṣa-dṛṣṭayo baliyasānātmya-madena manyunā

अर्थ: भगवान् ने कहा: हे कल्याणी, जो तुमने कहा वह निश्चय ही उत्तम है — कि लोग बिना बुलाए भी अपने स्वजनों के पास चले जाते हैं। किन्तु यह तभी है जब वे स्वजन, देह-तादात्म्य से उपजे प्रबल अभिमान तथा क्रोध के कारण, आगन्तुक को दोषी दृष्टि से न देखें। (स्कन्ध 4, अध्याय 3, श्लोक 16)

जीवन के छह अलंकार — विद्या, तप, धन, सौन्दर्य, यौवन तथा उच्च कुल — शिव समझाते हैं, श्रेष्ठ जनों के लिए आभूषण हैं, किन्तु दुष्टों के लिए अभिशाप, जिनमें ये केवल अभिमान भड़काते हैं तथा बुद्धि को इतना विकृत कर देते हैं कि ऐसे मनुष्य सचमुच के महान् जनों की महिमा को नहीं देख पाते। ऐसे अस्थिर बुद्धि वाले मनुष्यों के घर, उन्हें अपना स्वजन मानकर भी, कभी नहीं जाना चाहिए, जो अपने अतिथियों को सन्देहभरी, क्रुद्ध, भ्रुकुटी-तनी दृष्टि से ग्रहण करते हैं। और तब वे सबसे गहरे घाव का नाम लेते हैं।

तथारिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः

शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता ।

स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तेभि-

र्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥ १९ ॥

tathāribhir na vyathate śīlīmukhaiḥ śete 'rditāṅgo hṛdayena dūyatā svānāṁ yathā vakradhiyāṁ duruktibhir divā-niśaṁ tapyati marma-tāḍitaḥ

अर्थ: जिसका शरीर शत्रु के बाणों से बिंध गया हो वह इतना नहीं तड़पता; घायल होकर भी वह लेटकर सो सकता है। किन्तु जो अपने ही कुटिल-बुद्धि स्वजनों के कठोर वचनों से मर्म तक आहत हुआ हो, वह उस पीड़ा से दिन-रात जलता रहता है। (स्कन्ध 4, अध्याय 3, श्लोक 19)



भगवान् शिव, शान्त धैर्य में बैठे, सती को कोमलता से समझाते हैं, यह चेतावनी देते हुए कि कोई बाण उतना गहरा घाव नहीं करता जितने अपने ही स्वजनों के कठोर वचन (श्लोक 15-19)।

कलह के नीचे छिपा घाव

अब शिव दक्ष की शत्रुता की जड़ को उघाड़ देते हैं। वे सती से कहते हैं कि वे दक्ष की समस्त कन्याओं में सबसे प्रिय तथा सम्मानित हैं — फिर भी ठीक शिव के साथ उनके सम्बन्ध के कारण, उन्हें अपने पिता का आदर नहीं मिलेगा, क्योंकि वह सम्बन्ध ही दक्ष के लिए सन्ताप का कारण है। जिस मनुष्य का हृदय महान् आत्माओं को देखकर ईर्ष्या से जलता है, जो इस बात से व्यथित होता है कि ऐसे प्राणी प्रत्येक देहधारी के मन तक के साक्षी हैं, वह कभी उन ऊँचाइयों तक नहीं चढ़ सकता जिन्हें उन्होंने प्राप्त किया है; वह तो उनसे केवल घृणा करता है, जैसे असुर श्रीहरि से घृणा करते हैं।

जहाँ तक अतिथि के सत्कार में उठने, आगे बढ़कर मिलने, प्रणाम में झुकने के शिष्टाचार का प्रश्न है — शिव कहते हैं — ये वस्तुतः विवेकी जनों द्वारा देह को नहीं, बल्कि मन में उस परम पुरुष को अर्पित किए जाते हैं जो प्रत्येक हृदय में निवास करता है। यही वह परम शुद्ध चेतना की अवस्था है, जिसमें परम तत्त्व अपने अनावृत वैभव में साक्षात् होता है, जिसे *वासुदेव* कहा जाता है।

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं

यदीयते तत्र पुमानपावृतः ।

सत्त्वे च तस्मिन्भगवान्वासुदेवो

ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते ॥ २३ ॥

*sattvaṁ viśuddhaṁ vasudeva-śabditaṁ yad iyate tatra pumān apāvṛtaḥ sattve ca tasmin
bhagavān vāsudevo hy adhoḥśajo me namasā vidhīyate*

अर्थ: परम शुद्ध चेतना की वह अवस्था, जिसमें परम पुरुष अनावृत रूप में देखा जाता है, वासुदेव कहलाती है; और उसी शुद्ध चेतना में मैं भगवान् वासुदेव को, जो इन्द्रियों की पहुँच से परे हैं, नमस्कार अर्पित करता हूँ। (स्कन्ध 4, अध्याय 3, श्लोक 23)

जो देह को ही आत्मा मानता है, और केवल देह का सम्मान करता है, उसका इस दर्शन में कोई भाग नहीं — और दक्ष, अपने अभिमान में, ऐसे ही मनुष्य हैं।

शिव की चेतावनी, तथा शोक की एक छाया

अपना हृदय स्पष्ट कर देने पर, शिव सती को अपनी सलाह खुलकर देते हैं। वे उनसे कहते हैं कि वे दक्ष के मुख को देखें तक नहीं — भले ही वे उनके पिता, उनके जनक हों — और न ही उनको जो दक्ष के भक्त हैं; क्योंकि दक्ष शिव के प्रति दुर्भावना रखते हैं और उन्होंने सृष्टि के अधिपतियों के समक्ष अपमानजनक वचनों से शिव का अपमान किया, यद्यपि शिव ने उनका कोई अपकार नहीं किया था। और तब वे ऐसे वचन कहते हैं जो शेष कथा पर एक छाया की भाँति गिरते हैं।

यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो
भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ।
सम्भावितस्य स्वजनात्पराभवो
यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥ २५ ॥

yadi vrajiṣyasy atihāya mad-vaco bhadraṁ bhavatyā na tato bhaviṣyati sambhāvitasya sva-janāt parābhavo yadā sa sadyo maraṇāya kalpate

अर्थ: यदि तुम मेरे वचनों की उपेक्षा कर वहाँ जाओगी, तो उससे तुम्हारा कोई कल्याण नहीं होगा। क्योंकि जब कोई सम्मानित व्यक्ति अपने ही स्वजन के हाथों अपमान सहता है, तो वह अपमान तुरन्त मृत्यु का कारण बन जाता है। (स्कन्ध 4, अध्याय 3, श्लोक 25)

इन्हीं वचनों के साथ संवाद समाप्त होता है। शिव ने पूर्ण स्पष्टता तथा पूर्ण प्रेम से कहा है; सती ने एक ऐसी चेतावनी सुनी है जिसे वे अभी अपने हृदय में मान नहीं पातीं। अध्याय आने वाले महान् शोक के कगार पर टिका समाप्त होता है, जब एक कन्या की अपने पितृगृह की तड़प एक पिता की अवमानना से टकराएगी।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. हर तड़प का अनुसरण नहीं करना चाहिए। अपनी माता और बहनों को देखने की सती की इच्छा स्वाभाविक तथा पवित्र है, फिर भी शिव उन्हें उस पर आचरण न करने की सलाह देते हैं, क्योंकि जिस घर में वे प्रवेश करना चाहती हैं वह अभिमान से विषाक्त है। स्वजनों के प्रति प्रेम हमें शत्रुता में चलकर जाने के लिए बाध्य नहीं करता (श्लोक 13-14, 24)।
2. कठोर वचन किसी भी शस्त्र से गहरा घाव करते हैं। शिव की यह शिक्षा कि शत्रु के बाण अपने ही कुटिल-बुद्धि स्वजनों के दुर्वचनों से कम पीड़ा देते हैं, मानव-हृदय में शास्त्र की सबसे मर्मभेदी अन्तर्दृष्टियों में से एक है — और स्वयं ऐसा घाव करने वाले कभी न बनने की चेतावनी (श्लोक 19)।
3. भाग्य के उपहार हृदय के अनुसार वरदान या अभिशाप बनते हैं। विद्या, तप, धन, सौन्दर्य, यौवन तथा उच्च कुल विनम्र को अलंकृत करते हैं किन्तु अभिमानी को भ्रष्ट कर देते हैं, उसे महान् जनों की महिमा के प्रति अन्धा बनाकर। वही वरदान अहंकार-शासित हृदय में अभिशाप बन जाता है (श्लोक 17)।
4. सच्चा सम्मान भीतर, प्रत्येक हृदय में स्थित प्रभु को अर्पित होता है। विवेकी जन देह को नहीं, बल्कि समस्त प्राणियों में निवास करने वाले परम पुरुष को प्रणाम करते हैं; सच्ची श्रद्धा उस शुद्ध चेतना, वासुदेव से उठती है, न कि मात्र बाह्य औपचारिकता से (श्लोक 22-23)।
5. अभिमान हमें पवित्र से विलग कर देता है। दक्ष पवित्र जनों की महिमा को सह नहीं सकते, इसलिए वे शिव से घृणा करते हैं “जैसे असुर श्रीहरि से घृणा करते हैं।” महान् जनों के प्रति ईर्ष्या आत्मा को उन ऊँचाइयों से सदा वंचित रखती है जिन पर वह चढ़ सकती थी (श्लोक 21)।
6. अपनी ही माया को स्वीकार करना सत्य की ओर पहला कदम है। सती स्वयं मानती हैं कि वे, अपने अजन्मा पति के विपरीत, अब भी जन्म तथा बन्धुत्व के आकर्षण से बँधी हैं; शास्त्र इस ईमानदारी को दोष नहीं, बल्कि आत्मज्ञान का आरम्भ मानता है (श्लोक 11)।

एक भाक्तेपूणं चिन्तन

यह अध्याय एक शान्त, कठिन सत्य पर घूमता है: प्रेम तथा विवेक सदा एक ही दिशा में संकेत नहीं करते। सती अपने परिवार से प्रेम करती हैं, और अपनी माता का मुख पुनः देखने की उनकी इच्छा में कुछ भी अपवित्र नहीं। फिर भी शिव, जो उन्हें उनकी समझ से अधिक प्रेम करते हैं, को उन्हें बताना ही पड़ता है कि यह विशेष द्वार अभिमान के एक घर पर खुलता है, और उसमें से चलकर जाना उन्हें महंगा पड़ेगा। कितनी बार हमारे अपने हृदय हमें ऐसे मेल-मिलाप की ओर खींचते हैं जो अभी सम्भव नहीं, ऐसे लोगों की ओर जो हमारे स्नेह को सन्देह तथा तिरस्कार से ग्रहण करते हैं। शिव सती को उनकी तड़प के लिए लज्जित नहीं करते; वे उसका आदर करते हैं, उनकी इच्छा को “उत्तम” कहते हैं, और तभी, कोमलता से, दूसरी ओर प्रतीक्षा कर रहे घाव को दिखाते हैं। यहाँ इस बात में एक शिक्षा है कि जिन्हें हम प्रेम करते हैं उन्हें कैसे समझाएँ — पहले उनकी इच्छा में निहित भलाई को स्वीकार करें, और तभी कठिन सत्य कहें। और स्वयं ऐसी सलाह सुनना सीखने में भी एक शिक्षा है, इससे पहले कि तड़प विवेक को पीछे छोड़ दे।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज अपनी वाणी के द्वार की रक्षा कीजिए। भगवान् शिव ने सिखाया कि अपने ही स्वजनों के कठोर वचन किसी भी बाण से गहरा जलाते हैं। संकल्प कीजिए, केवल इस एक दिन के लिए, कि आप अपने परिवार या निकट-जनों में किसी से कोई कठोर या हीन करने वाला शब्द नहीं कहेंगे — चाहे कितना भी उकसावा हो। किसी कठिन क्षण में उत्तर देने से पहले, रुकिए और मन ही मन प्रभु का नाम अर्पित कीजिए, “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय,” और उस स्मरण को अपने उत्तर को कोमल करने दीजिए। दूसरों को अपने शब्दों के घाव से बचाकर, आप उस परम पुरुष का सम्मान करते हैं जो, जैसा शिव स्मरण कराते हैं, प्रत्येक हृदय में निवास करता है।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का तृतीय अध्याय एक लघु-दृश्य है — दो पात्र, एक संवाद — फिर भी उसमें वह सम्पूर्ण त्रासदी धड़कती है जो अभी घटित होने वाली है। सती अपने पिता के भव्य यज्ञ के विषय में सुनती हैं और एक कन्या की पितृगृह जाने की तड़प से भर उठती हैं; भगवान् शिव, दक्ष द्वारा कभी उन पर बरसाए अपमान को स्मरण करके, उन्हें प्रेम तथा स्पष्टता से न जाने की सलाह देते हैं, राह में यह सिखाते हुए कि अभिमान अन्धा कर देता है, कि किसी सम्बन्धी की अवमानना सबसे गहरा घाव है, और कि सच्ची श्रद्धा भीतर प्रत्येक हृदय में स्थित प्रभु को अर्पित होती है। वे एक ऐसी चेतावनी के साथ समाप्त करते हैं जो दूर की गड़गड़ाहट-सी वायु में टँगी रह जाती है: यदि वे जाएँगी, तो उससे कोई कल्याण नहीं होगा। मैत्रेय हमें उसी कगार पर छोड़ देते हैं, जहाँ एक पवित्र हृदय की तड़प एक विवेकी हृदय की चेतावनी के सामने टिकी है — और जहाँ, हमें आभास होता है, प्रेम की परीक्षा सहनशीलता की सीमा से परे होने वाली है।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा साभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (सम्पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, तृतीय अध्याय, पृ. 361–364।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust.
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं संस्तुति के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दर्शाए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक द्वारा संबद्धता अथवा समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-4-adhyay-3-shiva-sati-samvad.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

